मूल्य ३)

7/62

7/62

मनुष्य बनो

BE MAN

ਮਨੁੱਖ ਬਣੋ

انسان بنو

ंरक्षक
व
ंस्थापक

परमसंत दयाल फकीरचंदजी महा

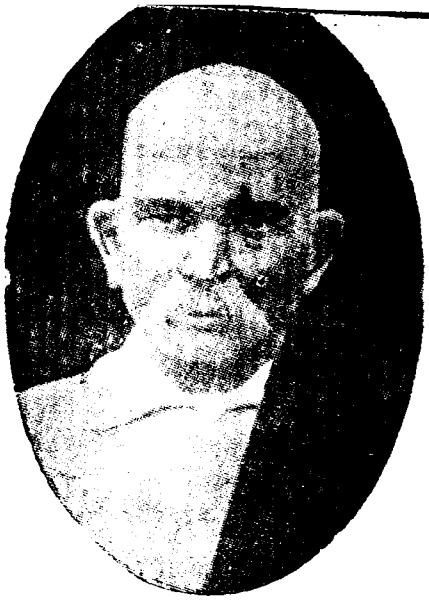

दातादयाल महर्षि शिवजी महाराज

परमदयाल फ़क़ीर साहब जी महाराज

दयाल नन्दूभाई जी महाराज

❋ विषय-सूची ❋

क्रम सं०	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	हमारी बात–गुरु की दात	(सम्पादक)	२
२	प्रार्थना	(दाता दयाल जी)	३
३	त्रिलोकजी सुनार की कथा	(दाता दयाल)	४
४	कर्म भोग अथबा मौज	(परम दयाल जी महाराज)	५
५	प्रार्थना	(,,)	१०
६	मत देख पराये औगुन	(दाता दयाल)	१०
७	प्रसन्नता और सुख	(,,)	१२
८	दयाल नन्दू भाई जी महाराज का उपदेश		१३
९	निश्चय शब्द	(दाता दयाल)	१४
१०	कर्म भोग अथवा मौज	(परम दयाल जी महाराज)	१५
११	पीरेमुग़ाँ साहब का जामे बेख़ुदी		१९
१२	कलामे नन्दू		२०
१३	कलामे फ़क़ीर		२७
१४	पत्रोत्तर परम दयाल जी का विश्व प्रेमी के नाम		२८
१५	कर्म भोग अथवा मौज	(परम दयाल जी)	३८
१६	विनती	(मैनेजर)	४०

प्रकाशक–मुन्शीलाल गोविल, दयाल कम्पाउंड, अलीगढ़ ।
मुद्रक–प्यारेलाल भा, चित्रा प्रिंटिङ्ग प्रेस, गङ्गा गञ्ज, अलीगढ़ ।

* हमारी बात—गुरु की दात *

गुरु बिन जग में जीव को, और न कोई ठौर ।
स्वार्थ और परमार्थ का, दाता कोई न और ।।
महिमा सतगुरु की बड़ी, को कर सकत बखान ।
भक्ति गुरु की दैन है, गुरु से उपजे ज्ञान ।।
सतगुरु चरन में कीजिये, प्रेम प्यार और प्रीति ।
भवसागर से तरन की, और न कोई रीति ।।
गुरु बिन हितकारी नहीं, देखा सब संसार ।
सब बिधि अपने दास को, गुरु सँवारन हार ।।
मन लागा गुरु चरन में, करते उनका काम ।
अब तो यह अपना हुआ, यही हुआ निष्काम ।।
बार बार गुरुदेव के, चरनन शीश धरूँ ।
तन मन धन गुरु चरन में, अपना भेंट करूँ ।।
विश्व प्रेम के भाव को, मन में दिया उपजाय ।
राधास्वामी सतगुरु, परमदयाल कहलाय ।।

वही सज्जन जिनके विषय में हम अप्रैल मास में बहुत कुछ निकाल चुके हैं आज फिर पधारे और गुरु महाराज की बड़ी प्रशंसा करने लगे। धन्य हैं ऐसे सत्पुरुष जिनकी केवल दृष्टि मात्र से ही हमारे मनोरथ सिद्ध होते हैं। कहने लगे मुझे लखनऊ जाना पड़ा। चीफ़ इंजीनियर से भेंट हुई। मेरे ४००००) के क्लेम्स मान लिये। और भी लाखों रुपया का काम देने का आश्वासन दिया। चूंकि गुरु महाराज जी मुझ से ऐसा कह गये थे। इसलिये मैं आप को यह सत्य वृतान्त सुनाने आया हूँ। वह बड़े दयालु और कृपालु हैं यह सब उन्हीं का चमत्कार है। जो इस प्रकार है। वरन मैं तो सब कुछ खोबैठा था।

हम मिट गये तो सूरते हस्ती नज़र पड़ी ।
वीराना हो गया तो फिर बस्ती नज़र पड़ी ।।
देखा तो खाकसारी ही आली मुक़ाम है।
ज्यों ज्यों बुलन्द हम हुये पस्ती नज़र पड़ी ।!

☆ मनुष्य बनो ☆

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

वर्ष १० । जुलाई १९६२, आषाढ़, श्रावण मासे-वि०२०१९ । सं०१०।११८

* विनती *

आश अब किसकी करूँ, जब दास तेरा हो गया ।
मैं हुआ तेरा तो तू भी, स्वामी मेरा हो गया ।।

तू है मेरे साथ पल छिन, फिर क्यों हो चिन्ता कोई ।
मेरे घट में तेरे रहने का, जो डेरा हो गया ।।

शीश पर तूने दया का, हाथ रख परिचय दिया ।
मैंने समझा काल का, सब हेरा फेरा हो गया ।।

जग नहीं स्थिर न स्थिरताई, जग की वस्तु में ।
यह तो चिड़िया रैन का, सचमुच बसेरा हो गया ।।

राधास्वामी नाम का, सुमिरन है उठते बैठते ।
नाम भव के सिन्धु के, तरने का बेड़ा हो गया ।

त्रिलोक जी सुनार की कथा (दाता दयाल जी)

त्रिलोक जी सुनार थे। पूरब देश में रहते थे। भक्तों के भक्त, सेवकों के सेवक और साधू सेवा की निष्ठा धारण कर रक्खी थी। जो कमाते साधुओं को खिलाते थे। ये उनका नित्य नियम था। घर में कुछ नहीं रखते थे।

"पका पकाया साधु पाय, बासी बचे न कुत्ता खाय।"

ये उनका सिद्धान्त था। उस देश के राजा की कन्या का विवाह था। भूषण बनाने के लिये राजा ने बहुत कुछ धन दिया। उन्होंने सबका सब साधु सेवा में उड़ा दिया। भूषणों की जब माँग पर माँग होने लगी ये टाल मटोल और हीला हवाला कर देते थे। अन्त में जब कठोरता का व्यवहार हुआ तो प्रातः काल देने का आश्वासन दिया। अवसमात् रात्रि के समय साधु आगये। ये उनकी सेवा में कुछ ऐसे संलग्न हुए कि जो आश्वाशन दे चुके थे उसे भूल गये। प्रातः हुई। भय भीत होकर भाग निकले और जंगल में जा छिपे। राजा इनके घर द्वारपाल भेजने को ही था कि इनकी आकृति का एक व्यक्ति दर्बार में पहुँचा। और भूषण उपस्थित किये। भूषण अद्वितीय थे। बड़ी कला कौशल व्यय की गई थी। ऐसी कला कौशल राजा ने इससे पूर्व नहीं देखी थी। बहुत प्रसन्न हुआ और अधिक पारितोषक दिया।

वह व्यक्ति पारितोषक लेकर आया और इनके घर में धूम धाम के साथ भंडारा किया। रंग रूप त्रिलोक जैसा था किसी को आश्चर्य क्यों होने लगा था! भंडारे के पश्चात् एक व्यक्ति प्रसाद लिये हुए त्रिलोक जी के पास पहुँचा "भाई ये प्रसाद लो, ये तुम्हारे लिये आया है" पूछा प्रसाद कैसा? "इसने उत्तर दिया" त्रिलोक सुनार ने राजा से भूषण बनाने के उपलक्ष में पारितोषक पाया था। उसके घर भंडारा था, ये प्रसाद उसका है। उन्हें आश्चर्य हुआ कि त्रिलोक भंडारा करे! उसके पास क्या धरा है! इसने कहा "तुमको

ज्ञात नहीं तीनों लोकों में त्रिलोक जैसा कौन है ! उस जैसा तो साधु सेवा करने वाला कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता"।

इन्होंने प्रसाद ले लिया। घर पर आये। वास्तव में इनके भण्डारे की धूम थी। सब प्रशंसा करते थे। ये समझ गये कि हो न हो "ये ईश्वर की लीला है और फिर पहले की भाँति साधु सेवा के कार्य में संलग्न हो गये।"

नोट:—इस प्रकार के वृतान्त एक दो नहीं अनेक हुए हैं। बनारस के रमैया बाबा, राधास्वामी सतसंग व्यास जिला अमृतसर के सरदार जैमलसिंह जी महाराज और होती मरदाँ के सरदार कर्मसिंह के वृतान्त अभी थोड़े ही दिनों के हैं, किन्तु जिनको मालिक का प्रेम नहीं है वह न तो इनका विश्वास करते हैं न सच्चा मान सकते हैं।

शब्द

तुम सेवक हो कैसे भाई, सेवा चित नहीं लाते।
बिन सेवा उद्धार कहाँ है, क्यों नहीं भक्ति कमाते॥
अपनी सी तुम करलो करनी, सतगुरु जाने अपनी।
अपने धर्म कर्म को पालो, धारो ऐसी रहनी॥
हर्ष शोक व्यापे नहीं मन में, ममता मोह न आवे।
हित से सेवा भाव में लागो, तुम्हें न काल सतावे॥
कर्म करो करतापन त्यागो, यह सेवक की रहनी !
कथनी बदनी काम न आवे, काम की वस्तु है करनी॥
सेवक धर्म कठिन अति दुस्तर, चित बानी सब सोधो।
राधास्वामी नाम को सुमिरो, निज मन को परबोधो॥

कर्म भोग अथवा मौज (परम दयाल जी महाराज)

प्रत्येक व्यक्ति अपने ही विचार में फंसा हुआ है। और अपने ही विचार को सत्य मानकर दूसरों का उचित अथवा अनुचित खंडन या मंडन करता रहता है।

आज दो अफ़सर और एक स्त्री मेरे घर पर आये। पहले तो मैंने मना कर दिया कि नहीं मिलूँगा। किन्तु मेरे पुत्र पदम ने कहा, यह ठीक नहीं है। वह इतनी दूर से आये हैं। बात यह है कि चूँकि मुझे कोई निज स्वार्थ नहीं है केवल मौजाधीन दाता दयाल का ऋण मेरे सिर पर है उसे उतारने के लिये सब कुछ करना पड़ता है। वरन् जो कुछ मुझे समझना था समझ लिया। शांति है, निर्भ्रांति है। दाता दयाल का कृतज्ञ हूँ। अतः उनको कमरे में बुलाया। मैंने पूछा कहो कैसे पधारे ?

अफ़सर–एक संस्था ऐसी निकली है वह कहने लगे कि वह उनके सत्संग में गये थे। उस संस्था वालों ने कहा कि राधास्वामी मत वालों के पास कुछ नहीं है। जो कुछ है उनके पास है वह ईश्वर के दर्शन करा देते हैं। चूंकि आप राधास्वामी मत के हैं इस सम्बन्ध में आपकी क्या सम्मति है।

नोट—मैंने जान बूझ कर उस संस्था का नाम नहीं लिया है। क्यों ? इसलिये कि मेरा काम परस्पर मेल कराना है न कि विछोह।

फ़क़ीर—मित्रो ! मेरा समस्त जीवन सत्यता और वास्तविकता की खोज में व्यतीत हुआ। जो समझा वह यह है कि न तो कुछ किसी धर्म सम्प्रदाय के पास है, न यह बातें बनाने और गाने बजाने, न व्याख्यान और सत्संगों में है। जो कुछ है वह प्राणी के अपने आप में है। प्राणी को भ्रम है, अज्ञान है। वाह्य कोई पूर्ण पुरुष किसी अधिकारी के भ्रम, संशय और अज्ञान को दूर कर देता है। जिस प्रकार कि दाता दयाल ने मेरे कर दिये। इसलिये मैं केवल किसी पूर्ण पुरुष के सतसंग और उनकी आज्ञा पालन करने में मानव की भलाई, सुख, चैन और शान्ति समझता हूँ। इसके प्राप्त करने के लिये मानव की अपनी सच्ची इच्छा और लगन का होना अनिवार्य है। जब तक यह नहीं होता लाख मानव सिर पटके वह बातूनी अथवा भावुक हो जायगा परन्तु शान्ति नहीं मिलेगी।

अफ़सर—वह तो ईश्वर के दर्शन कराने का दावा करते हैं।

फ़क़ीर—और भी तो कई संस्था हैं। जिनमें राधास्वामी मत की कई शाखायें भी हैं जो ऐसा दावा करती हैं किन्तु मेरी समझ में जो आया है वह मैंने इस पत्रिका में लिख दिया। मैंने उसकी कापी जिस में यह लेख इस संस्था के सम्बंध में था उनको पढ़कर सुना दिया। मैंने कहा जिस प्रकार तुमको आश्चर्य हुआ है मुझे भी हुआ था।

अफ़सर—बहुत देर तक सोचते रहे। कहने लगे कि आपकी बात सत्य है। हमने आपकी दो चार पुस्तकें भी पढ़ी हैं जिनके पढ़ने से शांति मिलती है। किन्तु वाह्य प्रभाव भ्रम में डाल देते हैं।

फ़क़ीर—यह काल और माया का देश है अर्थात जब तक शारीरिक और मानसिक जीवन है वाह्य प्रभाव सब पर प्रभावित होते हैं। जिनको निज अनुभव अथवा ज्ञान होता है वह उसमें फँस कर चकित नहीं होते। दूसरे भ्रम में आकर दुविधा में पड़ जाते हैं।

अफ़सर—इसका कोई उपाय ?

फ़क़ीर—किसी सत्पुरुष का सत्संग। बस !

अफ़सर—तो यह जो महात्मा यह दावा करते हैं कि वह ईश्वर के दर्शन कराते हैं क्या सत्पुरुष नहीं हैं।

फ़क़ीर—यदि सच पूछोगे तो कहूंगा नहीं। यह सत्पुरुष नहीं हैं। तुम मेरी बात को सुन कर चकित होगे किन्तु मैं जो कह रहा हूं सत्य कह रहा हूँ।

अफ़सर—वास्तव में हम चकित हैं। बात कुछ ऐसी ही है। आपका क्रियात्मिक सत्य और निःस्वार्थ जीवन विवश करता है कि हम आप पर विश्वास करें। किन्तु मनमें संशय विद्यमान है।

फ़क़ीर—मैंने अपने जीवन के वृतान्त वर्णन किये जहाँ मैंने दूसरों के अंतर अपना रूप प्रगट होने और उनको अंतर की सोपानों से पार कराने को कहा। मरते समय साथ ले जाने अथवा

अन्य बातों का उल्लेख करते हुए कहा कि मित्रो ! मैं शपथ पूर्वक वर्णन करता हूँ कि मैं इन समस्त घटनाओं से अनभिज्ञ होता हूं। इसीलिये जो कोई दर्शन किसी का अंतर में करता है वास्तव में वह उसका अपना ही भाव, बिचार, श्रद्धा और विश्वास होता है। न कोई बाहर से आता है। यह सब वाह्य प्रभावों का खेल है। यही काल और माया है।

मैंने हैदराबाद क्षेत्र की एक स्त्री का भूत भगोन का वर्णन करते हुए कहा कि मैं तो वहां गया नहीं। वह उस स्त्री का अपना ही विचार था, जो भूत बना हुआ था और उसने अपने ही विश्वास से मुझको प्रगट किया और वह उसका भूत उसके दूसरे विचार ने मेरे रूप में भगा दिया।

मैं राधास्वामी मत को इसलिये सच्चा मानता हूं कि स्वामी जी ने अपनी वाणी में कहा है। "काल ने अपनी पूजा आप कराई"।

यह काल मानव का अपना ही मन है। यही सब कुछ करता है। दुख-सुख, पाप-पुन्य, जीवन-मरन हानि-लाभ, सेवक-स्वामी गुरु-शिष्य यह स्वयं ही बनता है और मानवीय सुरत इसी में फंसी हुई है।

सन्त कबीर का शब्द है—"साधो यह मन है बड़ा ज़ालिम।"
जिससे इसको दाव पड़ा है तिस ही को है मालुम॥
आदि आदि।

स्वामी जी की वाणी है—रे मन मान बचन एक मेरा॥टेक॥
मैं तेरी दासी जनम जनम की, तू हुआ स्वामी मेरा।
तीन लोक का नाथ कहावे, तीन देव तेरा चेरा॥
ऋषि मुनि सब पर हुकम चलावे, जती सती सब घेरा।
तेरे बस सुर नर और योगी, कोई तेरा हुकम न फेरा॥
जिस चाहे तिस जक्त फंसाए, और चाहे तिस करे निबेरा।
ऐसी महिमा सुनी तुम्हारी, ताते तुम पर करूँ निहोरा॥

इस तन नगरी तुच्छ देश में, क्यों क़ैदी होय पड़े अधेरा।
सतगुरु मोसे कहा वचन इक, मनको संग लेचलो सवेरा।
ताते तुम पै करूँ विनती, चढ़ो गगन क्यो करो अवेरा ॥
इन्द्री द्वार विषय अब त्यागो, करो अभी सुलझेरा।
तुम सा संगी और न कोई, मैं तुम्हरी और तुम ही मेरा ॥
मुझ दासी का कहना मानो, गगन मंडल चढ़ बाँधो डेरा।
जैसे थे तैसे फिर होइहो, क्यों दुख सुख यहाँ सहो घनेरा ॥
सतगुरु पूरे भेद बताया, मन को संग लेकर घर फेरा।
मैं हूँ सुरत पड़ी बस तेरे, बिन तुम मदद शब्द नहीं हेरा।
जो यह कहन न मानो मेरी, तौ चौरासी करें बसेरा।
अब तुम दया करो मेरे ऊपर, सुन विनती खोजो धुन नेरा ॥
हम तुम दोनों चढ़ें अधर में, जाकर बसें पहाड़ सुमेरा।
तुम वहाँ रहना राज कमाना, हम पहुंचे जहाँ राधास्वामी डेरा।

यह उलझन सतगुरु बंदी छोड़ के अतिरिक्त न जावेंगे। इस शब्द को पढ़ देखो। जब तक कोई ऐसा बंदी छोड़ सतगुरु नहीं मिलता है प्राणी इस स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य, पाप-पुन्य आदि के चक्र से नहीं निकल सकता है। मुझे एक बंदीछोड़ सतगुरु दाता दयाल जिनकी मूर्ति (स्टेचू) सम्मुख है, मिले थे। उनकी दया से पार हो गया। शान्त हूँ निर्भ्रान्त हूं। रात दिवस उनका गुण गान करता हूं।

अफ़सर:—आपमें सत्यता है। हमको शान्ति मिलती है। हम पर दया करें।

फ़क़ीर—आप अभी अधिकारी नहीं हैं। आपने अपने समय का विचार न रखते हुए मेरे घर पर आने का साहस किया। यदि मेरा पुत्र विवश न करता तो मैं आपको इस प्रकार कभी नहीं मिलता।

अफ़सर:—क्षमा चाहते हैं। कब आयें ?

फ़क़ीर:—प्रत्येक देशी मास के प्रथम रविवार को नगर में सतसंग होता है, वहाँ आयें। मैं तो कुछ दे नहीं सकता हूं हाँ रेडियेशन का नियम काम करता है। सम्भव है आपको शान्ती मिल जाय और जीवन व्यतीत करने का सत् मार्ग ज्ञात हो जाय। मित्रो! कहाँ फिरते हो यह आज कल का गुरुइज़्म एक दूकानदारी है। दूकानदारी चलाने का प्रोपेगेन्डा साधारणतया: करना अनिवार्य होता है। बस अब आप जाइये।

वह नमस्कार कह कर चले गये और मैंने कर्मभोग वश अथवा मौज आधीन गुरु ऋण से मुक्त होने के लिये यह लेख लिख दिया है।

प्रार्थना

ले ले चरणों में मेरे, ऐ परम तत्व आधार दाता।
तेरे मिलने की थी चाह मुझको, तू है निकला अगम अपार दाता॥
गुरु रूप धर कर ज्ञान दीना, बेड़ा कर दिया पार दाता।
कालो माया का डर है क्या अब, रूप इनका समझ गया॥
खामोशी की मंजिल है तारी, मस्त उसमें सदा दाता।
मौज तेरी है अभी, यह जिस्मो मन मौजूद है॥
जो काम है तूने कराना, हाँ कराले ऐ दयाल दाता।
अपनी सच्ची भक्ति दे दे, मैं रहूं ज़ात में गुम।
वह ज़ात ही है रूप तेरा, ऐ मेरे दयाल दाता॥

मत देख पराये औगुन [ले० दाता दयाल]

सत्त पुरुष हुजूर राधास्वामी दयाल की वाणी है।

मत देख पराये औगुन। क्यों पाप बढावे छिन छिन॥
अपने औगुन आप विचारो। और काढ़न की जुगति संभारो॥

साधारण भाषा में इसका अर्थ यह होगा कि अपने दोशों पर आप विचार करो और उनके दूर करने का उपाय सोचो। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यों किया जावे। मैं संक्षेप में इसका उत्तर देने का प्रयास करता हूँ:—

प्रथम जो कोई अपने दोषों पर विचार करता है उसको उनकी वास्तविकता का पता लगता है। उनकी बुराईयों को जब वह जान लेता है, उसी समय उनकी जड़ स्वयं खोखली होने लगती है। यह कुछ संसार का प्राकृतिक नियम है। हम उस समय तक भ्रम और धोके में पड़े रहते हैं जब तक हम उनकी वास्तविकता का भेद नहीं जान लेते। जहाँ उसका पता लगा वह आप निर्बल होने लगता है और सुगमता से उससे मुक्ति मिल जाती है।

द्वितीय–लाभ यह है कि जो अपनी बुराई का बोध भान कर लेते हैं उनमें सावधानी रखने का संस्कार कुछ ऐसा धीरे २ बल पकड़ता जाता है कि वह उस पर अधिकार पा लेते हैं।

तृतीय–लाभ यह है कि जो अपने अवगुणों पर आप विचार करते हैं, वह दूसरों की बुराई नहीं करते। यह जान जाते हैं कि प्राणी में निर्बलता हैं और मांस-मज्जा से संबन्ध निर्बलता का कारण है और इसी से वह सबके साथ दया और सहानुभूति का व्यवहार करते हैं। वह न किसी की हानि करते हैं और न वह किसी को कष्ट देने के लिये उसके पीछे पड़ते हैं। और जिस समय उनका विचार अच्छा हो गया फिर उनके अच्छा बनने में संदेह नहीं रहता।

चतुर्थ– लाभ यह है कि अपने दोष देखने के कारण जब वह दूर होने लगते हैं तो प्राणी के हृदय का बर्तन खाली होने लगता है। वैसे तो प्रकृति में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसको तुम खाली कह सको, परन्तु बात यह होती है कि जब दोष-दृष्टि पड़ने लगी वह अपना स्थान छोड़ने लगता है और उस स्थान को भरने के लिये अच्छे गुण उस ओर दौड़ते हैं और जो व्यक्ति पहले बुरा था अब अच्छा हो जाता है।

पंचम– लाभ यह है कि दोषों को जान लेने से फिर उनके दूर करने का विचार स्वयं उत्पन्न होता है और किसी न किसी रूप से वह निर्दोष होने के प्रयत्न में लग जाता है।

षष्टम्—लाभ यह है कि अपने अवगुण देखने वाले उस अवगुण को बढ़ाते नहीं। जो व्यक्ति जिसके अवगुण को देखता है वह उस अवगुण का भागीदार बन जाता है। तुम यदि बारबार किसी के दोष ढूँढ़ोगे तो तुम्हारी टेव ऐसी हो जायगी और वह दोष स्वयं तुममें प्रवेश होने लगेंगे और किसी समय तुम स्वयं उस दोष के कारण बदनाम होने लगोगे। यह सिद्धान्त की बात है कि जिसको तुम सोचोगे, जो बोलोगे और जो करोगे उसी की सामिग्री से तुम्हारा मन-मस्तिष्क बनेगा। यदि हृदय अच्छा है तो उसकी ओर अच्छे विचार आवेंगे और वह स्वर्ग हो जायगा।
पाप देखोगे तो पापी बनोगे, पुन्य देखोगे तो पुन्यात्मा हो जाओगे।

सप्तम—लाभ यह है कि अपने दोष देखने से चूँकि उनसे छुटकारा पाने की इच्छा होती है, मनुष्य का हृदय स्वयं भगवान की ओर झुकने लगता है। कारण कि भगवान, भलाई, प्रेम और प्रकाश है और वह समस्त भलाइयों का भण्डार है। इस प्रकार कार्य करने से प्राणी भगवान का भक्त हो जाता है और जो व्यक्ति उसके प्रभाव में आते हैं उनमें भी भगवान की भक्ति उत्पन्न होने लगती है। यह सात लाभ हैं जो अपने अवगुण देखने से प्राप्त होते हैं। दूसरों के दोष देखने से इसी प्रकार की सात हानियाँ होती हैं, जो इन गुणों के विपरीत है। तुम स्वयं सोच समझ कर परिणाम निकालो हम यहाँ उनकी व्याख्या नहीं करना चाहते।

प्रसन्नता और सुख (दाता दयाल जी)

सुनो सुनो मैं खुशी का पयाम लाया हूँ।
मैं नूरे हक़ हूँ न तारीकी और साया हूं॥

प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्नता और सुख का इच्छुक है और प्रत्येक को उसकी खोज रहती है परन्तु यदि तुम पचास व्यक्तियों से पूछो कि तुमको किस बात से प्रसन्नता मिलेगी तो इन सबके उत्तर भिन्न-भिन्न और पृथक होंगे। पचास व्यक्तियों के उत्तर पचास से कम

नहीं किन्तु अधिक होंगे कारण कि सब के भाव अलग-अलग हैं और और सबके विचारों में भिन्नता है।

एक व्यक्ति कहता है कि यदि मुझको अमुक वस्तु मिल जाए तो मैं सुखी हो जाऊँ। दूसरा कहेगा कि यदि उसे अधिक खाने पीने को मिले तो वह सुख चैन से रहेगा। तीसरा कहेगा कि यदि उसे लिखना पढ़ना अथवा गाना बजाना आता तो वह सुखी होता इसी प्रकार और भी। वास्तव में यह व्यक्ति सुख को नहीं चाहते। यह भ्रम में पड़े हैं और अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग अलापते हैं और प्रत्यक्ष रूप में एक विचार के पीछे दौड़ रहे और हैं मैं इनको दोष नहीं लगाता। इनमें साहस है और उन्नति की इच्छा है। अधिक अच्छी स्थिति बनाने का विचार है और यह बातें स्वयं बुरी नहीं हैं, अच्छी हैं परन्तु इन सब बातों से सुख और प्रसन्नता का सम्बन्ध क्षणिक और अंशमात्र है। इनको न सुख की पहचान है और न उस को प्राप्त करने का सत्य साधन ज्ञात है। सच वास्तव में हृदय के संतुष्ट रहने की दशा है और वह केवल संतोष में देखी जा सकती है। सन्तोषी सदा सुखी। जिसमें यह गुण है और जिसने अपनी वर्तमान दशा पर सन्तुष्ट रहने का पाठ पढ़ लिया है, प्रसन्नता उसी के भाग्य में आवेगी। दूसरे उससे सदा वंचित रहेंगे।

दयाल नन्दू भाई जी महाराज का उपदेश

१–खुश रहो तुम ज़िन्दगी भर, हिम्मत से करना सारे काम।
हिम्मत बुलन्द रखना सदा तुम, पाओगे दुनिया में नाम॥
२–कामयाबी क़दम चूमेगी, रखो विश्वास तुम।
चाहते हो जो कुछ वह होगा, सतगुरू का है कलाम॥
३–राधास्वामी नाम की बरकत, सम्भालेगी तुम्हें।
खुश रहोगे सोमदत्त, दुनियाँ में होगे नेक नाम॥
४–है दुआ दिल से यही, मक़सद तुम्हारा पूरा हो।
लेते रहो दिल से सदा तुम, नाम गुरु का सुबह शाम॥

५—राधास्वामी अंग संग हैं, करते मदद हर आन हैं।
ध्यान में गुरु मूर्ति हो, पूरा होगा तेरा काम ॥

निश्चय शब्द (दात्ता दयाल)

जिसने निश्चय से गुरु का लिया सहारा।
उसका हुआ भवसागर से बेड़ा पारा ॥
नहीं साँचे भगत किसी से कभी हैं डरते।
नही भय से कभी करम के हैं वह मरते ॥
गुरु उनकी पल पल रक्षा करते।
वह सहज-सहज में जग के निधि से तरते ॥
गुरु की कृपा से हो उनका निस्तारा।
जिसने निश्चय से गुरु का लिया सहारा ॥
नही धरम करम से लगा किसी का ठिकाना।
नहीं संयम नेम में परमारथ का निशाना ॥
सब वृथा जानो ज्ञान ध्यान अनुमाना।
केवल सतगुरु की दया में है निर्वाना ॥
गुरु भक्ति से होगा आपही भला तुम्हारा।
जिसने निस्चय से गुरु का लिया सहारा ॥
मीरा, गनिका, रैदास और सदन क़साई।
इन सब को गुरु की भक्ति हुई सुखदाई ॥
तर गया गुरु की भक्ति से पापी नाई।
गुरु रात दिवस अपने भक्तों के सहाई ॥
सब त्याग मोह भ्रम जाल किया भक्ति से गुज़ारा।
जिसने निश्चय से गुरु का लिया सहारा ॥
गुरु के बल यह मन तुम्हारे बस में आवे।
गुरु के बल निर्भव द्वन्द को सहज नसावे ॥
गुरु के बल पाप प्रभाव न अपना दिखावे।
गुरु के बल प्रानी यम का फन्द कटावे ॥

गुरु नर स्वरूप सुन धरा सन्त अवतारा।
जिसने निश्चय से गुरु का लिया सहारा॥
गुरु की कर जीते जी तू छिन छिन सेवा।
गुरु सम इस जग में नहीं है कोई देवा॥
गुरु कृपा मिटे सब भ्रम भूल का भेवा।
गुरु शब्द जहाज के बने आप हैं खेवा॥
राधास्वामी ने वक्शा यह गुर सार का सारा।
जिसने निश्चय से गुरु का लिया सहारा॥

कर्म भोग अथवा मौज (परम दयाल जी महाराज)

नहीं चाहता लिखूं कुछ, मौज घसीटे लिये जाती है।
अपने बस में कुछ नहीं है, कर्म की गति लिये जाती है॥

कल ३-४ व्यक्ति सर्वोदय संस्था के मिलने के लिये आये। विनोवाजी के मिशन, शान्ती सेना आदि और देशीय परिस्थितियों के सम्बन्ध में वार्तालाप होता रहा। एक सज्जन ने पूछा कि मेरी सम्मति इस संस्था और शान्ती सेना के सम्बन्ध में क्या है?

मैं हंसा। "कहाँ राजा भोज और कहाँ कंगला तेली"? मेरी क्या शक्ति है जो कोई सम्मति दे सकूं। किन्तु दूसरे सज्जन ने कहा कि आप महा अनुभवी पुरुष हैं क्योंकि आपने हमारे दाढ़ी वाले साथी के मुख को देखकर ही उसके जीवन के कुल वृतान्त, भाव और विचार बता दिये। मैं तो बड़ा चकित हुआ। इससे ज्ञात होता है कि आप में आन्तरिक भाव बताने की शक्ति है। इसलिये मैं कहता हूँ कि आप भारतवर्ष की परिस्थितियों को देखते हुए भविष्य का अनुमान लगा सकते हैं। इसलिये हम कुछ सुनना चाहते हैं।

फ़क़ीर-सुनो मित्रो और संसार वालो! किसी व्यक्ति को अपनी विद्या, बुद्धि और ज्ञान का घमण्ड नहीं होना चाहिए। प्रकृति के रहस्य को जानना कठिन है। किन्तु जितनी थोड़ी बहुत समझ आई

है उसके आधार पर कहता हूँ:—वर्तमान परिस्थितियों ने मानव जाति को दूसरे शब्दों में मानवीय मनों को त्रुटि पूर्ण रूप से स्वतंत्र बनाया है। जीवन के प्रत्येक अंग में मानवीय मन अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रख रहा है। किसी को क्या कहूँ; मैं अपने मन को टटोलता हूं। अनेक बार निर्बलता प्रतीत करता हूँ। इसलिये मेरा अनुभव है कोई भी शासन हो जब तक मानव अपने मन पर अधिकार नहीं पाता है मानवीय जीवन किसी रूप में भी सुख, चैन और शान्ती को प्राप्त नहीं हो सकता है। लाख शान्ति सेनाएँ बनाओ। लाख व्याख्यान दो, कोई लाभ नहीं होगा। हाँ! संसार को दिखाने और समाचार पत्रों में लेख देने के लिये पर्याप्त सामिग्री अवश्य हो जायगी।

मैं आपकी संस्था की मनुष्य बनो की घोषणा के साथ सहमत हूँ। किन्तु मनुष्य बनने के नियम क्या हैं और उनपर कैसे साधन किया जाय:? यह विनोवा जी सम्भतः वर्णन करें क्योंकि वह इस संस्था के संचालक हैं।

मैंने समस्त जीवन मनुष्य बनने के लिये व्यतीत कर दिया। शत-प्रतिशत मुझे भी सफलता नहीं हुई है। प्रयत्न करता रहता हूं। मुझे अध्यात्म, योग आदि में तो पूर्ण सफलता है। किन्तु मनुष्य पूर्ण रूपेण नहीं बना गया है।

अब प्रश्न है कि मैंने मनुष्य बनने का क्यों प्रयत्न किया? संसार की कोई भी संस्था, धर्म और सम्प्रदाय ऐसा नहीं कहती। कोई तो कहता है भक्त बनो, कोई ज्ञानी, कोई ध्यानी, कोई अध्यात्म की शिक्षा देता है और कोई अलख, अगम, अनाम पद की बात करता है। मैंने मनुष्य बनो की पुकार क्यों की ?

इसका उत्तर मेरे अपने जीवन की खोज का परिणाम है। जब तक जीवन है तुम कुछ भी बनो। अनाम गति प्राप्त करो, अध्यात्म के प्रेमी बनो। मस्ती आनन्द लो। भक्ति करो। धनाड्य हो जाओ

अंत में तुम्हारा इस जीवन में इन समस्त परिस्थितियों के अनुभव के पश्चात् उत्थान होगा। फिर जागृति अवस्था में आकर इस ससार को देखोगे और यहाँ के प्रभावों को ग्रहण करने के लिये विदशता होगी।

इसलिये इस संसार में जीने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम इस ढंग से रहें कि हमारा यह जीवन (जाग्रत अवस्था) सुख, चैन, शान्ती, समृद्धशीलता और प्रसन्नता पूर्वक व्यतीत हो।

इसलिये इन नियमों का पालन करना सब के लिए है। भक्ति, योग, अध्यात्म आदि विशेष २ प्रकृति वालों के लिये है। यह जन साधारण की वस्तु नहीं है। इनसे आवागमन अथवा परलोक तथा मस्तिष्कीय शान्ती मिलती है। सांसारिक जीवन का संघर्ष दूर न होगा।

मानवता प्रथम बात है। जिसकी आवश्यकता प्रत्येक जीव आत्मा को है। क्योंकि मैंने आत्म पद, अकाल पद, अनाम पद, ज्ञान और योग की सोपानों का अनुभव करने के पश्चात् भी, जब इस जाग्रत अवस्था में अन मानवीय संस्कारों ने जो मुझे वाह्य जगत अथवा मिलने वालों आदि से मिले, उनके कारण दुख अशान्ति उत्पन्न हुई। इस अनुभव के आधार पर मेंने घोषणा की कि जन साधारण का धर्म प्रत्येक व्यक्ति का मानवता (मनुष्यता) ही अनिवार्य है।

इससे पूर्व आज तक जितने सन्त और महापुरुष हुए उन्होंने इस जागृत अवस्था को दुख सुख द्वन्द का स्थान मान कर अपने आपको शान्त रखने और सन्तोष से कार्य लेने अथवा कर्म भोग या मौज समझ कर शान्ति पूर्वक रहने का आदेश दिया।

मुझे प्रकृति ने मानव जाति के जगत कल्याण का कार्य दिया। मैंने विवशनः अपनी खोज के आधार पर " मनुष्य बनो " का प्रारम्भ किया।

श्री विनोवा जी ने किस आधार पर यह घोषणा की। मैं नहीं जानता। मेरी समझ में यह आया है कि जब तक शासन में मनुष्यता नहीं आयेगी अथवा शासन के कर्मचारी मनुष्य नहीं हैं। यह असम्भव है कि देश में शान्ती और सौख्य आसके। क्योंकि वाह्य प्रभावों का अधिकतर सम्बन्ध समय के शासन से होता है।

आप अनुमान कर सकते हैं कि जब लोक अथवा विधान सभाओं में उपद्रव मचते हैं। मैं-मैं तू-तू के दृश्य सम्मुख आते हैं तो विरोधी पार्टी (दल) क्या करती हैं? जब तक शासन की गावर पोलटिक्स विद्यमान है यह असम्भव है कि देश में सुख, चैन और शान्ती स्थापित हो सके।

यू-ऐन-ओ में धड़े बंदियाँ हैं कहीं भी शान्ती पूर्वक किसी विषय पर विचार नहीं किया जाता है।

ऐ! सर्वोदय के पुजारी तूने पूछा कि भारत का भविष्य क्या होगा? मेरा उत्तर यह है कि शान्ती, सौख्य कोसों दूर है।

अब सम्भव है तुम प्रश्न करो इसका कोई उपाय? मैं निर्भय होकर कह रहा हूँ कि जब तक वर्तमान प्रजातंत्र में चुनावों के विधान को परिवर्तित न किया जायगा। यह असम्भव है कि सौख्य शान्ती का मुख मानव जाति देखे। मेरी स्वतंत्रता की कुञ्जी भाग प्रथम व द्वितीय का अध्यन करें।

अंतर्राट्रीय परिस्थितियों को दृष्टिकोंण में रखना अति आवश्यक है। वास्तविक सम्मति देने से मुझे इनकार है। क्यों? इसलिये कि। बहुत सी ऐसी बातें हैं जो जन साधारण के बताने की नहीं होती हैं। उनसे लाभ की अपेक्षा हानि होती है।

फिर भी इतना संकेत किये देता हूँ कि अब एक नवीन संस्था की आवश्कता है। जिसमें निःस्वार्थ, निष्काम करने वाले सज्जन सम्मिलत होकर अपने जीवनों को मानव जाति के लिये भेंट करें। और उनको विशेष प्रकार की शिक्षा और संस्कार मिले। जब तक देश

में नवीन जाग्रति के व्यक्ति नहीं आते और उनको सत्य मार्ग से कार्य करने का ज्ञान नहीं होता। यह असम्भव है कि सौख्य शान्ति आसके।

वर्तमान परिस्थितियों में जिस प्रकार अधिक कार्य श्री नेहरू जी ने किया है वह अति प्रशंसनीय है। किन्तु वह तो अपने आपको कांग्रेस से बाँध चुके हैं। परन्तु वह करें भी तो क्या ? कांग्रेस के कार्यकर्ता स्वयं साधन सम्पन्न नहीं हैं। चूंकि पार्टी का शासन है वह विवश हैं कि कांग्रेस का साथ दें। उनके लिए कोई और चारा नहीं है।

मुझे प्रसन्नता है कि सर्वोदय संस्था "मनुष्य बनो" के शब्दों से कार्य कर रही है। परन्तु आपके यहाँ कितने व्यक्ति हैं जो स्वयं मनुष्य हैं। क्या आपकी संस्था में हेरा-फेरी नहीं होती ? प्रत्येक व्यक्ति अपने अंतर झाँक कर देखे। यह क्रियात्मिक जीवन का प्रश्न है। और क्रियात्मिक जीवन प्रत्येक प्रकार का त्याग चाहता है।

अतः मेरा निज विचार है कि श्री नेहरू के पश्चात् श्री जय प्रकाश नरायन क्षेत्र में आयें तो बहुत कुछ भलाई की सम्भावना हो सकती है। धार्मिक और पांथिक पक्षपात को दूर करने के लिये संतमत की शिक्षा है। यदि कोई उसके समझने की शक्ति रखता हो। मैंने अपनी ओर से सचाई के व्यक्त करने में निज अनुभव के आधार पर कोई कसर नहीं रक्खी। इससे अधिक मैं और नहीं कहना चाहता हूँ। यद्यपि चाहता हूँ प्राणी मात्र को शान्ती।

❀ पीरेमुगां साहब का जामे बेखुदी ❀

नातिक़ा है बंद इस जा, आमिलो हुशियार का।
क़ाफ़िया है तंग बेशक, नाज़िमो नस्सार का॥
राहे वहदत को न समझेगा, कभी नादाँ यहाँ।
काम है इसका समझना, सच्चे वाक़िफ़कार का॥

माहियत को दीद की, जाने भला क्योंकर हुई।
ख्वाबबीं को इल्म तक, होता नहीं बेदार का ॥
सच्ची बातें हम सुनाते हैं, करो कान इस तरफ़।
महव दिल से है तसव्वुर, वहम का पिन्दार का ॥
है खुदी जब तक खुदा का, देखना दुशवार है।
बेखुदी का जाम पीना, शग़ल है सरशार का

कलामे नन्दू

खुश हैं उसी में, जिस तरह रक्खे हुज़ूर है।
लेते हैं नाम जब कभी, दिल में सरूर है ॥
बेफ़िक्री है और बेग़मी, दिन कट रहे ज़रूर।
लेना किसी से कुछ नहीं, देना ज़रूर है ॥
क़ुदरत की बात जाने खुदा, दर्द सर हो क्यों।
वह जानता भला और बुरा, फिर जुस्तजू क्यों है ॥
राज़ी रहो हर हाल में, जब तक है ज़िन्दगी।
चलने का वक्त आये जब, चुप चाप चलना है ॥
आये यहाँ की सैर की, सब देख भाल ली।
दिल भर गया है मुन्शी जी, कुछ कहना नहीं है ॥
हो राधास्वामी धाम में, दिन रात बसेरा।
आना नहीं न जाना हो, वह ज़ात मेरी है ॥
जब तक चलेगी साँस, हम लेंगे गुरु का नाम।
वह ज़ात पहले थी मेरी, अब ज़ात मेरी है ॥

स्वाँस स्वाँस पर नाम सुमिरना, स्वाँस का तार न टूटे।
जो कोई या बिधि नाम को सुमिरे, सुख सम्मति जग लूटे ॥

कर्म भोग अथवा मौज (परम दयाल जी महाराज)

लिखने लगा कुछ, तो हँसी आ गई।
किस लिये ऐ हस्ती, तू भरमा गई ॥

तूने जो समझा है, समझेगा कौन।
फिर क्यों क़लम तेरी हरकत में आगई ॥
मौज जाने आप जिसने, बनाई है ज़िन्दगी मेरी।
वह आप ही मुझ से, है यह काम करवा रही ॥

संसार वालो! देखो मनुष्य के बच्चा जन्म लेता है। जगत को देखता है। देखकर उसके मन के भीतर प्रश्न उठते रहते हैं। समस्त आयु वह किसी वस्तु के जानने की इच्छा करता रहता है। कोई किसी मार्ग पर गया कोई किसी ओर। वंचित कोई भी नहीं है। किसी न किसी प्रकार की कुरेद प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर विद्यमान है।

मेरे अन्दर बाल्यवस्था से ही कुरेद थी कि पी कहाँ है? इस संसार का मालिक, बनाने वाला कौन है, क्या है? हिन्दू धर्म के संस्कारों से प्रारम्भिक जीवन में विशेष विशेष प्रकार के धार्मिक विचार मिले थे। उनके अन्तर्गत उस मालिक से मिलने की लालसा थी। मौज राधास्वामी मत में ले आई। वहाँ एक विशेष विचार उसके सम्बन्ध में मिला। कि वह पिण्ड, अण्ड ब्रह्माण्ड से परे है। पिन्ड, अण्ड, ब्रह्माण्ड से पारा। विनती करे जहाँ दास तुम्हारा ॥

इसलिये समस्त आयु साधन अभ्यास में व्यतीत की। और परे जाकर देखा अथवा अनुभव किया।

यह खोज का क्रम वाह्य प्रभावों के कारण मेरे अन्तर उत्पन्न हुआ। आज आपको स्वामी जी का शब्द सुनाता हूँ।

इक पुरुष अजायब पाया। कोई मर्म न उसका गाया।
बिन सन्त हाथ नहीं आया। ऋषि मुनि सब धोखा खाया ॥
क्या व्यास वशिष्ठ भुलाया। क्या शेष महेश भरमाया ॥
पाराशर योगी नारद । शृङ्गी ऋषि गोता खाया ॥
हम कहें कौन समझाई । परतीत न कोई लाया ॥
सन्तन यह भाख सुनाया। कोई गुरु मुख बूझ बुझाया।
घट घट में काल समाया। श्रुत स्मृत का काल बिछाया ॥

षठ शास्त्र बुद्धि चलाया। अंधे मिल धूल उड़ाया ॥
कुछ हाथ न उनके आया। बिन सतगुरु भटका खाया ॥
संतन वह देश जनाया। तब तुच्छ जीव भी पाया ॥
नीचों को घाट लगाया। ऊँचों को काल बहाया ॥
राधास्वामी पता बताया। खोजी का कमर बँधाया ॥

मेरा अस्तित्व पाराशर ऋषि के गोत्र से है। सन् १९०५ में यह वाणी पढ़ी थी। संसार वालो! मानवीय प्रकृति अपने पूर्वजों तथा माता-पिता की बुराई नहीं सुन सकती है। हिन्दू होने के नाते यह मेरे लिये अथवा सबके लिये असम्भव है कि वह इस प्रकार के खंडन से दुखी न हों। किन्तु चूंकि मैं इस संसार के दनाने वाले मालिक के मिलने की धुन अथवा प्रबल इच्छा के अंतर्गत वर्षों रोने धोने के पश्चात् दाता दयाल महर्षि जी के पवित्र चरण कमलों में स्वप्न द्वारा गया था। और उन्होंने मुझे यह राधास्वामी मत की शिक्षा दी थी। मैं स्वयं उस पुरुष को देखना तथा मिलना चाहता था जिसका कि उल्लेख इस वाणी में है। और अपने कर्म भोग वश कि जो कुछ अनुभव होगा वह बता जाऊँगा। इसलिये यह कर्म करता हूँ और कोई निज स्वार्थ नहीं है। अथवा यह अवश्य है कि हम (मानव जाति) जो कि मैंने समझा है उसके अनुसार समझता हूं कि हम सब भूल भ्रम में हैं। और अपने अज्ञान वश धार्मिक दृष्टिकोण से पारस्परिक बट कर दुखी और अशांति हैं। इसलिये यह अभिप्राय है कि वास्तविकता और सत्यता जो मेरी समझ में आई है बता जाऊँ। जिससे कि हम अपना जीवन सुख शांति से व्यतीत कर सकें।

चूंकि यह भूल हमारी अपनी ही अनसमझी और अज्ञान से है, इसलिये मैं गुरुमत को मानता हूं। क्योंकि गुरु नाम है अंधकार को दूर करने वाले का भेद, ज्ञान, रहस्य और सच्ची समझ देने वाले का।

इस अज्ञान और भूल को दूर करने के लिये आदि गुरु राधास्वामी दयाल के रूप में प्रगट होकर इस वाणी के द्वारा कहते हैं कि जिस भगवान, मालिक के मिलने आदि के लिये प्राचीन महा पुरुषों ने अपने-अपने विचार मत मतांत्र और धर्म बनाये हैं उन्होंने वास्तविक धर्म और भेद नहीं पाया है।

मैं अपनी समस्त आयु खोने के पश्चात अपने मन से प्रश्न करता हूँ कि ऐ फ़क़ीर! क्या तुमने उस अजायब पुरुष को पा लिया है। यदि पा लिया है तब तो किसी को कुछ कह सकते हो। यदि नहीं तो तुम अपराधी और पापी हो। हृदय को बहुत स्वच्छ रख कर बात करो।

ऐ संसार वालो! अपने ऊपर एक उत्तरदायित्व को प्रतीत करता हुआ यह लेख लिख रहा हूँ। और कहता हू कि मैंने वास्तव में वह अनुभव प्राप्त किया है, वह अद्भुत रहस्य समझा है जो पहले किसी धर्म और पन्थ ने स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया है। वह कैसे? वह इस प्रकार कि जिन सज्जनों को मेरे निज अनुभव जो मैंने सतसंगों में वर्णन किये हैं अथवा लेख बद्ध किये हैं उनको ज्ञात है। वह सोच सकते हैं कि किसी धर्म और पन्थ ने इस रहस्य को इस प्रकार खोला है। कदापि नहीं। सब कहते हैं कि प्राणी के भीतर कोई बाहर से आकर राम, कृष्ण, गुरु आदि प्रगट होता है। और वह उसकी सहायता करता है। यह ग़लत है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना ही भाव, विश्वास, श्रद्धा, आश, संकल्प और इच्छा है अथवा वह संस्कार है जो उसने जन्म जन्मान्तरों से अथवा इस जन्म में वाह्य प्रभावों से लिये हैं। वही दृश्य बन कर सहायक होते हैं।

यही रहस्य है। गुप्त भेद है। मर्म है। जो सन्तजन और पूर्ण पुरुष मनुष्य को देते हैं। और इसी विचार से सम्भव है स्वामीजी ने, सन्त कबीर ने अन्य विचार वालों का खंडन किया हो।

अनेक धर्म पन्थ हैं जो यह कहते हैं कि उनके महापुरुष मृत्यु के पश्चात् मानवीय सुरत को स्वर्ग दिलाते हैं अथवा आगे चल कर उनको ऊँचे लोकों में पहुँचाते हैं और मोक्ष दिलाते हैं। यह भी ग़लत सिद्ध हुआ। कई सज्जन मरे जिनको उनके अन्तिम समय में उनके कहने के अनुसार मेरा स्वरूप लेने के लिये गया किन्तु मुझे कोई पता नहीं है। इसलिये यह सबके सब इस प्रकार की बातें करने वाले भूले भटके हुये हैं।

घट घट में काल समाया। श्रुत स्मृत जाल बिछाया।
षठ शास्त्र बुद्धि चलाया। अन्धे मिल धूल उड़ाया॥

यह काल प्राणी का अपना ही मन है। हमारा मन इस ब्रह्माण्डी मन का अंश है जिस प्रकार हमारा मन अनेक प्रकार के विचार लेता हुआ अपना नया संसार रचता रहता है। इसी प्रकार यह ब्रह्मांडी मन भी अपनी रचना करता रहता है बल्कि हमारा मन इस के आधीन है। यह सब सृष्टि लोक लोकान्तर सब इसी के खेल हैं। क्या मानवीय बुद्धि ने इस समय संसार में एक बड़ी हलचल उत्पन्न नहीं कर रक्खी है? वर्तमान विज्ञान और मानवीय बुद्धि ने क्या कुछ नहीं किया है। और समस्त प्राणी प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय के व्यक्ति इसी ब्रह्माण्डी मन और ईश्वर को मनाने वाले हैं। जो इस संसार का बनाने वाला है। चूँकि इस संसार में जीव सुखी नहीं है अशान्त हैं। जन्म मरण जीव का होता रहता है। इसलिये वह मालिक, वह सच्चा परमात्मा और है जिसके राज्य में न दुख सुख न जन्म न मरण है। मैं फिर अपने मन से प्रश्न करता हूँ कि क्या सच-मुच ऐ फ़क़ीर! वह देश है, वह मालिक है जहाँ दुख सुख, जन्म-मरण नहीं है? झूँठ न बोलना अन्यथा अपने कर्म का फल भोगोगे।

मेरा उत्तर है। हाँ है किन्तु मैं उसमें स्थाई रूप में नहीं ठहर सकता हूँ। क्योंकि अभी तक इस काल और माया का प्रभाव विद्यमान है।

काल और माया के प्रभाव क्या हैं ? यह वासना है कि जगत का कल्याण हो। प्राणी दुख-सुख, जन्म-मरण से बचें। साथ ही जो पिछली वासनायें हैं उनके प्रभाव विद्यमान हैं। दूसरे शब्दों में प्रारब्ध कर्म काटता हूँ।

इसके अतिरिक्त देखो यह हमारा शरीर और मन इस ब्रह्माण्डी मन अथवा कर्तार पुरुष का अंश है। चूँकि इसका गुण ही वासना उत्पन्न करना है इसलिये कोई पुरुष सन्त हो, ऋषि हो, मुनि हो, वली हो, नबी हो, रसूल हो, जब तक शरीर और मन साथ है वासना रहित हो ही नहीं सकता है। इसका उपाय केवल यही है कि अपनी वासना को अपने लिये न रक्खो बल्कि औरों के लिये रक्खो। क्योंकि मन का धर्म है, शरीर का धर्म है, वासना के अन्तर्गत रहना। यदि हम औरों के लिये वासना रखते हुये कर्म करेंगे तो हमारे लिये उस वासना के परिणाम से दुखी सुखी न होना पड़ेगा। यही काल माया के देश का नियम है अर्थात् दासना। कोई व्यक्ति इस देश में वासना रहित नहीं रह सकता है। केवल एक उपाय है। निष्काम कर्म, यह मेरा अनुभव है। दावा किसी बात का नहीं है।

यदि वासना रहित किसी समय होने का प्रयत्न भी किया जाय तो सुरत को किसी स्थान पर ठहरना अनिवार्य है। सूरत का स्वभाव ठहरना है। इसका यह गुण है। यदि यह नहीं ठहरेगी तो प्राणी को बेचैनी रहेगी। इसलिये मैंने विवशतः निज अनुभव के आधार पर इसको उस स्थान पर ठहरने का साधक किया जिसका संकेत स्वामी जी ने अपने शब्द में किया है।

इक पुरुष अजायब पाया। कोई मर्म न उसका गाया॥

वह अजायब पुरुष क्या है ? जीवन के अनुभव ने जो कि सत-संगियों की सेवा करने से प्राप्त हुआ। मुझे विश्वास होगया कि जितने भी रूप, रंग, रेखा, विचार, और भाव, मेरे अंतर उत्पन्न होतेथे वह सब प्राकृतिक और मेरे मन के बनाये हुये थे क्योंकि मैं किसी के

भीतर नहीं जाता हूँ न पता होता है। वह उनका अपना ही भाव और विश्वास होता है। इसलिये जो कुछ मेरे अंतर होता था वह भी मेरा ही विचार, भाव, विश्वास और प्यार था। तो मैंने विवशतः उसकी खोज की जो वास्तविक और सच्चा मालिक है। वह क्या निकला ?

एक बेअंत प्रकाश और शब्द का देश है। उसमें स्वयं को भूल कर विचरता रहता हूँ और शरीर और मन के बंधन के कारण नीचे आकर संसार का कार्य निष्काम हो करता रहता हूँ।

वह जो शब्द और प्रकाश का महान् देश है। वह अजायब देश है। यह मेरी समझ में आया है। यदि कोई और देश है जिसका स्वामी जी ने उल्लेख किया है तो मुझे ज्ञात नहीं हुआ।

इस देश से आगे भी जाने का प्रयत्न रहता है। बहुत ही कम बार इससे परे का अनुभव हुआ किन्तु जब वहाँ गया तो क्या हुआ?

जहाँ पुरुष तहाँ कुछ नहीं, कहें कबीर हम चीन्हा।
जो कोई हमरी सेना समझे, पावे पद निर्वाना॥

नहीं खालिक़ मखलूक़ न खिलक़त, कारण कारज नहीं वहाँ दिक्कत।

फिर क्या अनुभव है ? मौनता आदि में और मौनता अंत में।

जीवन क्या है ? होंठ खुले और बन्द हुये। वास्तविकता क्या है ? जो है सो है।

इसलिये मौजाधीन कहे जाता हूँ कि ऐ मानव ! तू एक चेतन का बुलबुला है रहस्य को समझ कर जब तक मौज है खेल है, खेल ले, पक्षपात, द्वेष, ईर्ष्या को त्याग प्रसन्नता पूर्वक जीओ और औरों को जीने दो।

भरम था तलाश थी, राज़ पाया तलाश मिटी।
ज़िन्दगी इक चेतन का बुलबुला, दोस्तो साबित हुई॥
मौज है उस मालिक की, जिसने खेल यह बना दिया।
आ गये इस खेल में, और राज़ अस्ल को पा लिया॥
चलते चलते चाहते हैं, कल्याण हो इन्सान का।
कल्याण उसका होता है, जो गरु की शरण में आगया॥

संतन मत में आन कर जो है हम को मिला ।
साफ़ करके हमने उसको ज़ाहिर है कर दिया ॥

कई सन्त मत की गद्दियों वाले मेरी पत्रिका, पुस्तकों और विचारों को पढ़ने की आज्ञा अपने क्षेत्र वालों को नहीं देते। सुनो—

जन्म अकारथ कर जाओगे, इस तग दिली व तास्सुब से ।
आये थे तुम संत मत में, सोच लो फिर किस लिये ॥
यह धाम डेरे और इज़्ज़त, इक दिन होगी सब फ़ना ।
ज़ात है फ़क़त बाक़ी, किस लिये हो रहे हो गुमराह ॥
खुद भूले औरों को भुलाया, अपनी ज़ाती ग़रज़ के लिये ।
दर्दे दिल रखकर हूँ प्रगटा, जगत के कल्याण के लिये ॥

कलामे फ़क़ीर ॥

चढ़ गया ऊँचा बहुत, जहाँ मैं और तू दोनों नहीं ।
आप है बस एक वहाँ पर, ज़ातो सिफ़ात दोनों नहीं ॥
बुलबुला है ज़िन्दगी, शूं शूं है जब तक है क़याम ।
मिट गई हस्ती तो फिर, बाक़ी यहाँ पर कुछ भी नहीं ॥
मौज का है खेल सारा, मौज का है कारोबार ।
मिट चुकी सब जुस्तजू, अब जुस्तजू कोई नहीं ॥
हुक्म दाता मान कर, जगत के कल्याण का करता हूँ काम ।
सच्च मानो नन्दू भाई, पास मेरे कुछ भी नहीं ॥
है अगर कुछ लाइल्म हूँ, चाहता हूँ बस एक बात ।
गुम हो जाऊँ ज़ात में, इस फ़ानी जहाँ में कुछ नहीं ॥
अजर हूं और अमर हूं मैं, लाफ़ानी हूं और लामकाँ ।
इस हालत के इज़हार के लिये, बानी लफ़्ज़ कुछ भी नहीं ॥
राधास्वामी ज़ात मेरी, है सिफ़ात से जुदा ।
आप आपको समझ ले तो, ईं व आँ कुछ भी नहीं ॥
जब दिल की नहीं अपने हुई गुफ़्तगू ।
फिर औरों से नाहक़ की है गुफ़्तगू ॥

ऐ बेखबर क्या तुझको भी है अपनी खबर।
ऐ किल्ले जहां तू अपनी तो कर जुस्तजू ॥
कहां जमाने में उसका सानी, वही तो है लुत्फ़े ज़िन्दगानी।
हुए जो महरूम उससे दुनियां में, उनको खाना खराब देखा ॥

पत्रोत्तर परमदयालजी का विश्वप्रेमी के नाम।

आपका पत्र मिला। आपने अंग्रेज़ी की पोइट्री लिखकर मेरी जो प्रशंसा की है। सोचता हूं कि क्या मैं इस प्रशंसा के योग्य हूँ ? और इसका अधिकारी हूँ अथवा नहीं। इसका उत्तर हां और नहीं दोनों ही हो सकते हैं। हां ! इसलिये कि मैंने केवल आपको ही नहीं वरन अपनी नीयत से मानव जाति के लिये कार्य किया है। नहीं ! इसलिये कि मैं तो कुछ कर नहीं सकता हूँ। जिसको जो कुछ मिला और मिलता है अथवा मिलेगा, वह अपने ही कर्म, विचार, भाव, श्रद्धा, विश्वास और अपनी वासना से ही मिलेगा, मिलता है, और मिला। मैं केवल गुप्त रहस्य, वास्तविकता, भेद, मर्म और सरल विधि बताता हूँ।

जो कुछ भी मैंने जीवन में बताया, लिखा यह सब मैंने अपने जीवन के अनुभव और निरीक्षण के आधार पर कहा।

मुझे उस मालिकेकुल, सर्वाधार, निर्वाण अथवा अमर लोक आदि के प्राप्त करने की प्रबल इच्छा थी। उसका अनुभव हो गया। अब उसमें स्थायी रूप से लय होने का समय निकट है।

उस निर्वाण, अमर पद और मालिक का उल्लेख इन संतों, महापुरुषों ने किया हुआ है, वह है:—

जब तक मैं है कैसे कहूं कि वह है नहीं।
ज़िन्दगी में खोज की यक़ीन था कि वह है कहीं ॥
उसके होने का यक़ीन खुद को भी था मुझे।
और उसकी बाबत संत जन भी थे कह गये ॥

गो नामो रूप का फ़र्क़ था ज़बान दानी की वजह।
इख़्तलाफ़ ज़ुबान से भी हम उससे मुनकिर न हो सके॥

आज दोपहर को समाधि में उसी कुरेद के अन्तरगत चला गया और सदैव जाता रहता हूँ। जसा कि मैंने अपने लेखों में कहा है कि चूँकि मैं किसी के भीतर प्रगट नहीं होता हूँ। ऐसे दृश्य प्रत्येक व्यक्ति के अपने ही भाव, विचार, श्रद्धा, विश्वास और संस्कारों के कारण होते हैं। इसलिये अब मैं किसी सगुण अथवा निर्गुण, कल्पित रूप का ध्यान अथवा सुमिरन नहीं करता हूं। बल्कि मैं अपने अन्तर प्रकाश और शब्द में रहता हूं और इससे आगे जाने का साधन करता रहता हूँ।

इस निज अनुभव के आधार पर राधास्वामी दयाल, सत्तकबीर अथवा उपनिषदों के ऋषियों जिन्होंने समस्त धर्म और पंथों का खण्डन किया है और उनको काल और माया के अन्तर रक्खा है के साथ सहमत होने को विवश हूँ।

चूँकि वर्तमान राधास्वामी मत वाले अथवा अन्य धर्म सम्प्रदाय इसी मानसिक मण्डल में रहते हुए जीवों के विचार को संकीर्णित और पक्षपाती बनाते रहते हैं। इसलिये दातादयाल और हुज़ूर साँवलेशाह की आज्ञानुसार मैंने साहस करके सत्यता को व्यक्त किया है। जिससे कि भारतवर्ष के भीतर से धार्मिक और पांथिक पक्षपात दूर हो और भारतवासियों को सच्चा ज्ञान मिले। जिससे कि उनके दोनों, लोक और परलोक सुधर जायें।

सन्तों की वाणी समयानुसार रोचक और भयानक थी। दूसरों को अपनी ओर खींचने के लिये यह ढंग ठीक है। किन्तु वास्तविकता के विचार से कछ समय के पश्चात् मानव साधन करता हुआ निराश हो जाता है। और बहुत से व्यक्ति गिर जाते हैं। और अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं यही कारण है कि विभिन्न धर्म पन्थ और संस्था बनती गईं और कुछ व्यक्ति इन धर्मों की शिक्षा से रोचक और भयानक होने के

कारण घृणा करने लगे। मैं स्वयं इस रोचक और भयानक शिक्षा के अन्तर्गत भटकता रहा हूँ। इस समय भी लाखों करोड़ों व्यक्ति अपनी मोक्ष अथवा मालिक के दर्शनों की आश में चल रहे हैं। शान्ति और लक्ष्य की प्राप्ति कोसों दूर है। कितने ही नास्तिक होगये।

सन्तों के मार्ग में सत्त लोक, अलख लोक आदि का उल्लेख है। वहाँ हंस आदि का वर्णन आता है। मैं भी इस वाणी जाल के अन्तर्गत रहा हूँ। यह सत्त कबीर और सत्त पुरुष राधास्वामी दयाल की वाणी दाता दयाल ने मुझे सन् १९०५ में अध्ययन करने को दी थी।

वाणी है पोथी सार वचन की :— भेद मार्ग और शोभा सत्त लोक की :—

आरत गावे सेवक तेरा। संशय भरम ने चित को घेरा॥
अब स्वामी कृपा करो ऐसी। संशय जाय सब विनाशी॥
निरसंशय चित्त शब्द समायी। दसवें द्वार रहे ठहरायी॥
आगे महा सुन्न मैदाना। मौज होवे तो करे पयाना॥
आगे भँवर गुफ़ा की खिड़की। सोहंग धुन जहाँ निशदिन खड़की॥
तहाँ जाय आनन्द पाऊँ। आगे को तब सुरत चढ़ाऊँ॥

यहाँ तक तो जितना भक्ति, विश्वास जो दाता दयाल के शुद्ध स्वरूप से था मैंने द्वैत के अङ्ग में रहकर आनन्द प्राप्त किया। किंतु आगे जाना कठिन था। इसलिये कि मैं द्वैत को नहीं छोड़ सकता था। मेरा प्रेम दाता दयाल से अत्यन्त था। इतने प्रेम के होते हुए भी वह सदैव कहा करते थे कि फ़क़ीर अभी तुम काल और माया के चक्र से नहीं निकले। इससे निकालने के लिये दाता दयाल ने मुझे आचार्य की पदवी दी। और इस द्वैत से ऐ मुन्शी लाल! आप व अन्य सतसंगियों ने मुझे निकाल दिया। वह कैसे! जैसे कि मैं कहा करता हूँ कि मैं किसी के भीतर नहीं जा पाता हूं। इस अनुभव ने मुझे सोहंग गति में ठहरा दिया। किन्तु इस से भी

वह पूर्ण शान्ति अथवा गुप्त रहस्य व सार भेद नहीं मिला। विवशतः सुरत और ऊपर को जाना चाहती थी। एक तो संस्कार व दूसरे अन्तरीय कुरेद समाप्त नहीं हुई थी।

सत्त नाम सत शब्द ठिकाना। चौथा पद सोई सन्त बखाना॥
हंसन शोभा कही न जाई। कोटिन चन्द्र सूर छबि छाई॥
अदभुत रूप पुरुष क्या बरनू। कोटि सूर्य चन्द्र इक रोमू॥

इस प्रकार की वाणी पढ़ पढ़ कर मैं उन्मत्त बना रहा हूं। मैं ही नहीं सहस्रों व्यक्ति इसी उन्मत्तता में हैं। इस प्रकार की वाणी ने सहस्रों स्त्रियों को उन्मत्त बनाया। जिन्होंने अपने घरबार छोड़े। और गुरुजनों की सेवा में आयु व्यतीत कर दी। मैं भी उनमें से एक हूँ। अपने जीवन के आधार पर संसार को कहना चाहता हूँ बल्कि मुंशीलाल तुमको ही कहता हूँ। क्या तुमने दाता दयाल के प्रेम में जीवन नहीं व्यतीत किया? क्या उसी कुरेद के अन्तर्गत तुम मेरे पास नहीं आये? मैं तुम्हारी अथवा और जिज्ञासुओं की कुरेद को समाप्त करके तुमको सच्ची शान्ति और सौख्य देना चाहता हूं। किन्तु मिलेगी केवल उनको जो सच्चे जिज्ञासु और अधिकारी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस उन्मत्तता में प्राणी को द्वैत अंग के कारण एक प्रकार का आनन्द मिलता है। और आनन्द ही मानवीय सुरत को फँसाये हुये है। इस आनन्द के चक्र में आकर व्यक्ति कफ़नी पहन कर भिखारी बनते हैं। इस आनन्द को प्राप्त करने के लिये मानव क्या कुछ नहीं करता योगी, ज्ञानी, ध्यानी, भक्त और उपासक सब इसी आनन्द के चक्र में हैं। और यही काल मत है।

सच कहता हूं तो दुनियाँ सुनने को तैयार नहीं।
असत्य कहने के लिये, यह फ़क़ीर भी तैयार नहीं॥

गुरु का ऋण शीस पर है, उसको उतारना है मुझको।
इसलिये यह राज, दिये जाता हूँ मुन्शीलाल तुमको॥

कि तुम निकलो, इस काल और माया के जाल से भाई।
जाओ उस जा जहां, यह दयाल देश है भाई।
यह संसार चंद रोज़ा है, यहाँ नहीं क़याम।
आखिर को छोड़ना है इसे, जाना है निज धाम॥

अब सुनो! यह हंस क्या हैं? मुझे संसार को अज्ञान में नहीं रखना है और न त्रुटि पूर्ण विधि से अपनी पूजा करवानी है। जो कुछ मैंने इस समय तक अनुभव किया वह कहता हूँ। यदि जीवन में और कुछ अनुभव हुआ तो वह भी बता जाऊँगा।

मुझे अपने अन्तर प्रकाश मय छोटे-छोटे अनेक सूर्य दृष्टिगोचर होते हैं। अनुभव बताता है कि जिस प्रकार इस हमारे सूर्य के अनेक प्रकार के लोक लोकान्तर, चन्द्र, पृथ्वी आदि बने हुये हैं। और यह सब इसी सूर्य से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार उस विशेष चेतन रूपी प्रकाश का लोक है। जिसको सम्भवतः सन्तजन सत्त लोक कहते हैं अनुभव से देखता हूँ कि वह एक महान प्रकाश के समुद्र का बड़े से बड़ा केन्द्र है उसकी शक्ति, अनेक दीप, लोक बनाये हुये है। यह रचना कल्पित नहीं है। सच है। आकाश पर दृष्टि डालो करोड़ों तारागण और लोक लोकान्तर हैं। इन सबका भण्डार है। अनुभव सिद्ध करता है कि इन समस्तों का कोई और केन्द्र है। जसे कि इन ग्रहों आदि का केन्द्र सूर्य है।

प्रत्येक ऊपर के लोक में जीवन है। चाहे वह किसी प्रकार का हो। उस चेतन प्रकाश के जो अणु हैं, वह हंस हैं। जिस प्रकार हमारे शरीर के रक्त में कीटाणु होते हैं और वास्तव में वह कीटाणु ही हमारे जीवन को स्थापित रखते हैं। इसी प्रकार इस सत्त अथवा लोक में प्रकाश के अणु हैं जो हंस हैं अथवा संतों ने अपनी भाषा में उनको हंस कहा है।

जिस प्रकार वर्तमान वैज्ञानिक वायुमण्डल के अथवा शून्य के प्रभावों को मशीनों द्वारा ज्ञात करते हैं। इसी प्रकार मानवीय

सुरत अपने अंतर ऊपर के लोकों में जाकर वहाँ के प्रभावों को ग्रहण करती हैं। जो प्रभाव मैंने लिये अथवा लेता हूँ वह क्या है? मस्ती, आत्मिक आनन्द जिसके लिये मानवीय सुरत इस परिवतन शील जगत के प्रभावों से दुखी होकर किसी विशेष अनभिज्ञ वस्तु की खोज करती है, जो कि स्थाई हो।

मैं जीवन में उसकी खोज करता था। वह क्या निकला? एक महान प्रकाश और शब्द का भण्डार। वह एक महान चेतन पुरुष है। जिसकी एक एक किरण अथवा रोम से लाखों द्वीप प्रकाश के बने हुये हैं! और यह सब इसके चारों ओर इसमें रहते हुए चक्कर लगाते रहते हैं। यह अनुभव सिद्ध बात है। वहाँ के प्रभाव आन्तरिक अनुभव को बढ़ाते हैं। और मस्ती, आत्मिक आनन्द और प्रसन्नता मिलती है। उसके दर्शन केवल अनुभव से होंगे।

बहुधा मुझ प्रकाश इतना तीव्र प्रतीत होता है जो कि असहनीय है, जिसकी चकाचौंध की अधिकता के कारण शब्द की ध्वनि भी अधिक तीव्र होती है।

दीपन शोभा अजब सँवारी, हन्स हन्स प्रति दीप निरारी।

मैं अपने आपसे प्रश्न करता हूँ कि क्या तुमने ऐ फ़क़ीर इन हंसों के दीपों को देखा है? सुनो मुन्शीलाल! मानवीय मस्तिष्क इस समस्त रचना का मॉडिल है। इसमें समस्त सृष्टि सूक्ष्म रूप से भरी हुई है। जो कुछ बाहर है वह भीतर भी सूक्ष्म रूप से विद्यमान है।

मैं जब स्टेशन मास्टर था। रिफ़रेशर कोर्स के लिये लायलपुर रेलवे स्कूल में एक माह के लिये गया था। वहाँ एक मोडिल रूम था, जिसमें समस्त प्रकार के यातायात का प्रबन्ध था। छोटे छोटे इंजन थे जो कि बिजली से चलते थे। विभिन्न प्रकार की लाइन करेन्स काँटे सिगनल आदि सब कुछ था। वहाँ उनसे हमको बाह्य कार्य करने का ज्ञान दिया जाता था।

इसी प्रकार प्राणी अपने अन्तर में साधन से इस समस्त वाह्य रचना का ज्ञान प्राप्त करता रहता है। जो ज्ञान मुझ को हुआ वह मेरे इस अंतरीय साधन से हुआ। उससे मुझे विशेष प्रकार का आत्मिक आनन्द और अनुभव हुआ। और समझ विवेक विचार प्राप्त हुआ। जिससे मेरी इस स्थान पर ९० प्रतिशत आन्तरिक कुरेद समाप्त हो गई। और मैं अधिक समय तक प्राकृतिक आनन्द को लेता रहा हू।

यह मुझे इस साधन से मिला। औरों के सम्बन्ध में मैं क्या कहूँ। अमी कुण्ड जहाँ भर रहे भारी। पुरुष दरश का करें अहारी॥ मुझ नहीं ज्ञात वह अमृत क्या है ? मेंने जो समझा वह कहता हूँ। अमी नाम है अमृत का जिसने अमृत पी लिया वह नाश को प्राप्त नहीं होता। अजर अमर हो जाता है। मुझ इस साधन से पूर्ण विश्वास हो गया कि मैं आदि, अनादि, जुगादि और स्थाई हूं। और वह हंस प्रकाश स्वरूपी सूर्य जिनका मोडिल मैं अपने अंतर देखता हूं कि वह भी स्थाई है ! क्यों ? इसलिये कि नेस्ती से हस्ती नहीं हो सकती है। वह देश सहित है। सहित ही रहेगा। और इस हस्ती में मस्ती है। जिसका अनुभव केवल साधक कर सकता है। नित नित लीला नई वहाँ की। महिमा कहाँ लग वरनू वहाँ की॥ मुझे आज १५ अथवा २० वर्ष हो गये। इस पूर्ण विश्वास हुये हुये को कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता हूँ। जैसा कि मैंने पहले कहा है और मैं विवश हो गया कि अपने अंतर केवल प्रकाश और शब्द में साधन के समय ठहरूँ। और मैं प्रतीत करता हूँ कि जब मैं उस प्रकाश और शब्द में जाता हूँ तो नई नई प्रकार की मस्ती के आनन्द लेता हूँ। प्रकाश में नये नये परिवर्तन होते रहते हैं। इसलिये मैं स्वामी जी के शब्दों को सत्य मानता हूं। कि वहाँ नित नई नई लीला होती है।

कभी कभी उस मालिक कुल की खोज में इस प्रकाश और शब्द के मडल से ऊंचा जाने की वासना के अंतर्गत जाता हू। यद्यपि

सदैव नहीं जाया जाता है। जब जाता हूं तो अपना हैपना समाप्त होने लगता है। जीवन में केवल ५ या ६ बार पूर्ण रूप से गया हूंगा तब क्या हुआ ?

अलख लोक तिस आगे थापा। गई सुरत तहाँ तज कर आपा ॥

मुंशीलाल ! मेरा अनुभव जो कभी कभी लिखता रहता हूँ आज सत्य सिद्ध हो रहा है और यही सब कुछ मैं अपने पिछले लेखों में दूसरे शब्दों में वर्णन करता आया हूँ कि मैं वहाँ नहीं रहता हूं और व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है।

अलख पुरुष शोभा कहा गाई। अरब कोटि शशि सूर्य लजाई ॥

ज्ञात नहीं स्वामी जी का क्या भाव है ? नीचे अनेक प्रकार के छोटे छोटे सूर्य लाखों सहस्रों की संख्या में दृष्गोचर होते थे किन्तु यहाँ वह सब समाप्त हो गये। केवल एक ही प्रकाश श्वेत रंग का रह गया। मैं ऐसा समझता हूं। अब भी साधन चल रहा है यदि कुछ और अनुभव हुआ तो वह भी वर्णन कर जाऊँगा। किन्तु अनुभव से यह वाणी सत्य प्रतीत हो रही है। जिस प्रकार मेरे अंतर में ही अलख रूप है इसी प्रकार ऊपर भी एक महान लोक अनुभव में आता रहता है।

सुरत रूप वहाँ ऐसा पाई। कोटि भान छबि ऐसी गाई ॥

मेरा बिचार ठीक है। वह तमाम सूर्य आदि जो दृष्टिगोचर होते थे कहाँ से निकले थे। मेरे ही अंतर से निकले थे। मेरे ही अंतर थे। वह एकत्रित होकर मेरा ही रूप हो गये। सोचो यदि सोच सकते हो। अन्तर एकत्रित हो यदि हो सकते हो फिर ज्ञात होगा कि यह वाणी सत्य है। अनुभव सिद्ध है।

सुरत चली आगे पग धारा। अगम लोक को जाय निहारा ॥

चलते चलो प्रकाश और शब्द के अतिरिक्त कुछ और नहीं है और चलो चलो आगे चलो। मैं चला कभी आगे जाता हूं तो क्या हो जाता है।

चलत चलत प्रभु शब्द गुम होजाई । गुमहुई सुरत अनाम पद हर्षाई।।'

यह अनुभव है जो मैं अपने लेखों में वर्णन किया करता हूँ वही बात स्वामी जी अहा कहते हैं ।

अगम पुरुष की शोभा न्यारी । कोटन खरब सूर्य उजियारी ।।
आगे ताके पुरुष अनामी । ताको अकह अपार बखानी ।।
सन्त बिना वहाँ और न जाई । सन्तन निज घर वह ठहराई ।।

मुन्शीलाल ! यह करनी का भेद है, नाहि बुद्धि विचार ।
कथनी तज करनी करो, तब पाओ कुछ सार ।।

मुझे इस करनी से क्या मिला ? यह कि मानवीय जीवन एक चेतन का बुलबुला है । होंठ खुले और बन्द हुये । मौज ने गति की । रचना बनी इसमें मैं भी अर्थात मेरी सुरत बनी । मानवीय शरीर में आई । अशान्ति मिली घबराई । दाता दयाल अहा हा मिल गये । अपने आदि और वास्तविक घर का पता दिया । फिर अपने घर पहुँची जहाँ:—

दुःख सुत्र, जीवन मरण, आनन्द बेआनन्दी नहीं ।
वहाँ चैन, सुकून, शान्ति के, सिवाय कुछ भी नहीं ।।

अभी मौजाधीन शरीर में आता रहता हूं । फ़क़ीर बन कर खेलता हूँ किन्तु वास्तविकता से परिचित हूँ ।

यदि तुम रहस्य दाता, ज्ञान दाता, भेद दाता के विचार से मेरा आदरमान करते हो तो कोई हानि नहीं है । इसके अतिरिक्त एक वस्तु मुझे और मिली है उसके आधार पर हित अथवा शुभ भावनाएँ देता हूँ । वह क्यों देता हूँ ? क्योंकि साधन ने सिद्ध कर दिया है कि मानवीय सुरत इस अनाम अकाल पुरुष जात की अंश, है और इसमें समस्त रचना विद्यमान है । और वह अपने ही भाव विचार, वासना और शक्ति से अपने लिये जो चाहे कर सकता है । और इस अनुभव ने सिद्ध किया है कि शुभ भावनाओं में शक्ति है । इसलिये मैं शुभ भावना सबको देता रहता हूं कि प्राणीमात्र को शांति ।

वेदों के ऋषियों ने क्या पता इसी अनुभव के आधार पर "शु संकल्पं अस्तु" का मन्त्र बनाया हो। और इसी भाव से मेरा विचार है कि यदि ऐसे साधन करने वाले संसार का भला चाहें तो संसार में शांति आदि का आना सम्भव है। दावा मैं किसी बात का नहीं करता हूँ। अनुभव है तुमको और अपने मिलने वालों को विशेषकर और संसार को साधारणतः सच्चे हृदय से चाहता हूँ शान्ति और सब प्रसन्न रहें।

अब जो प्राणी इतना साधन नहीं कर सकते हैं कठिनाई प्रतीत करते हैं। उनके लिये स्वामी जी कहते हैं :—

हे स्वामी यह विनती हमारी। भेद दिया तुम अतिकर भारी॥
पहुँचूं कैसे सो भी गावो। मन मेरे को बहुत उमगाओ॥
सुरत शब्द की राह बताई। दया बिना नहीं पहुँचे भाई॥
संशय भरम न राखो कोई। धीरे धीरे सुरत समोई॥
शब्द खोज तुम निशदिन राखो। बार बार स्वामी यह भाखो॥
अब आरत पूर्ण कह गाई। सन्त सता सब दिया लखाई॥

मैंने संशय भ्रम को दूर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जो मेरी वाणी ही नहीं सुनते और पढ़ते तो मेरा क्या अपराध है।

मुन्शीलाल! दाता दयाल की वाणी पढ़ो। मेरे नाम एक शब्द है।

गुरु से प्रेम बढ़ाया तू ने, गुरु चेला व्यवहारा।
आगे नहीं कोई गुरु न चेला, अगम अनाम अपारा॥

चूंकि इस समय वर्तमान महात्मा जनों ने जन साधारण को अपनी गद्दियों और डेरों से बांध रक्खा है और अधिकारी जीव निबल, अबल, अज्ञानी बुरी प्रकार इस द्वैत के अंग में फँसे हुये हैं और अज्ञानवश पक्षपाती हैं। इसलिये मैंने कार्य किया है, जिससे कि सत्यता के खोजियों, जिन्होंने इस मार्ग में अपना जन्म गंवाया है उनका अकाज न हो।

भारतवर्ष से जो धार्मिक द्वेष और पक्षपात है यह कम से कम बुद्धिमान वर्ग का तो दूर हो। औरों का नहीं तो सन्त मत वालों का ही दूर हो।

तुम मुझसे प्रेम करते हो। मेरे नाम का ढिंढोरा पिटाते हो। मैं अपनी स्थिति को स्पष्ट रखने के लिये इस सत्यता को व्यक्त कर रहा हूं। बात सूक्ष्म है समझना कठिन है। समझाना तो मेरे लिये सुगम है पर मैं नहीं चाहता कि प्राणी मुझे अज्ञानवश पूजें। क्योंकि जिन महापुरुषों ने त्रुटिपूर्ण रूप से अपने आपको पुजवाया उनका परिणाम ठीक नहीं देखा। संसार में मत मतान्तर और संस्थायें बन गईं। मैंने इस भारत के कल्याण के लिये सत्यता को व्यक्त किया है:—तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही।

जग कल्याण जगत में आया, परम दयाल सनेही॥

अब तुम्हारा जी चाहे जो मेरे सम्बन्ध में समझते हो समझते रहो।

कर्म भोग अथवा मौज (परम दयाल जी)

आज कुछ माननीय सज्जन मिले। कहने लगे पंडितजी। आप नाम दान का क्रम क्यों नहीं चालू करते हैं? उनमें से एक बड़े विद्वान पंडित थे। उन्होंने बहुत आग्रह किया। मैंने कहा "नाम दान क्या है?" हित और मति देना! मेरे अनुभव में यह आया है कि अनेक सज्जन जो मेरे सतसंग में आये उनके जीवन पलट गये। उनके अंतर मेरा रूप प्रगट हुआ। उनकी सक्रियता हुई। किन्तु न मैं उनको जानता हूँ न कुछ मैंने उनको एकान्त में कहा। और अनेक ऐसे भी हैं जो मुझसे उपाय बिधि और आदेश लेगये परंतु उनको अधिक समय होगया फिर भी कोई लाभ नहीं पहुँचा। इस अनुभव के आधार पर मैं विवश हूँ कि मानूं कि गुरु-शिष्य आपेक्षिक शब्द हैं।

जिसने किसी विचार को श्रद्धा और विश्वास से ग्रहण कर लिया वह शिष्य और जिसने सच्चे हित से किसी के भले के लिये सच्ची इच्छा प्रगट की और सत्य सम्मति देदी वह गुरु है। यह तो है वास्तविकता। किन्तु अज्ञान और भ्रम ग्रस्त जीवों को जब तक भ्रम के उलझन में न डाला जायगा। वह भ्रम से निकल नहीं सकते हैं। मैंने उस विद्वान को सम्बोधित करते हुये कहा। सोचो मैं क्या कह रहा हूँ ?

मैं सतसंग कराता हूं और लेख लिखता हूँ। इनमें मेरा सच्चा हित होता है और अपने हृदय से सत्य सम्मति देता हूँ। गुरु मन्त्र है क्या ? मंत्र कहते हैं सम्मति, उपाय और विधि को। जिस ने ग्रहण करली और उसका अभ्यासी और साधक हुआ वह तर गया।

राधास्वामी मत, गुरु मत है। स्वामी जी महाराज का जीवन चरित्र पढ़ो। एक स्थान पर किसी ने आकर परम पुनीत पवित्र विभूति रायबहादुर सालिगराम जी की बहुत प्रशंसा करते हुए स्वामी जीसे कहा कि वह आपके अत्यन्त प्रेमी और सच्चे शिष्य हैं। उस पर स्वामी जी ने कहा। क्या पता ? मैं सालिगराम जी का गुरु हूं अथवा वह मेरे गुरु हैं। यही शब्द दाता दयाल जी ने मेरे सम्बन्ध में स्वर्गीय पं० मंसाराम जी से प्रयोग किये थे।

मैं उस समय अज्ञानी और भ्रम ग्रस्त था। दाता दयाल ने अपना सहारा मुझे प्रदान किया और मेरा अज्ञान भ्रम मिटा कर सत्यता और वास्तविकता का सूर्य मेरे अन्तर प्रकाशवान कर दिया। मैं उन पवित्र पुनीत विभूति का कृतज्ञ हूँ। उनके आदेशानुसार सच्चे गुरु मत के फैलाने में मैंने भी कोई कसर नहीं रक्खी है। बात सूक्ष्म है। बिना साधन और सतसंग के शीघ्र समझ में नहीं आ सकती है और वह भी सच्चे जिज्ञासू के।

चूंकि मुझे कोई निज स्वार्थ नहीं है और साथ ही मैं मेल कराने के लिये आया है। यदि नया डेरा, क्षेत्र और संस्था बनाऊँ तो आगे

मे ही अनेक प्रकार वा गुरुइज्म चल रहा है। एक और नवीन शाखा उत्पन्न करके मानव जाति को विभाजित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहता हूं।

मेरा सतसंग ही वास्तविक और सच्चा गुरुमत है। जिससे जीव के भ्रम, शङ्का, संशय और सन्देह निवारण होते हैं। और प्राणी को स्वच्छ मस्तिष्क बनाकर शान्ति व सौख्य मिलता है। किन्तु जिन व्यक्तियों के शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य गिरे हुये हैं अथवा जो सांसारिक आशाओं और वासनाओं में अति ग्रस्त हैं उनको मेरे सतसंग से शीघ्र ही लाभ नहीं हो सकता है। जब तक कि वह शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन न करें और इसके अधिक समय तक साथ साथ अपने आचार, विचार, सदाचार और व्यवहार अन्य शब्दों में मनुष्यता के नियमों को न अपनायें। मैंने इसलिये जन साधारण के लिये अपनी निज सम्मति "मनुष्य बनो" की दी है। मैंने जो कुछ कहा वह निज अनुभव के आधार पर कहा है।

लाखों डेरे हैं, धाम हैं, गद्दियाँ हैं, अनेक गुरु हैं क्या जीवों के जीवन पलट गये हैं? विशेष विशेष का उल्लेख नहीं करता हूँ।

इसके उपरान्त मेरा कार्य और कर्तव्य है जगत कल्याण का। वह कायरा बन्दी (क्षेत्र बनाकर) में रह कर नहीं हो सकता है।

—०❀०—

प्रेम करता हूँ समझ कर, आपको मैं राजदाँ।
हो इनायत मुझ पै ऐसी, राज हो जाये अयाँ॥
है यकी कामिल कि हम भी, पहुँचेंगे उस जा जरूर।
गिरते पड़ते भी चलेंगे, तो भी पहुँचेंगे वहाँ॥
चल रहे हैं शौक से, इस काम को करते हुए।
आप जानें कब बनेगा, काम मेरा महरबां॥
आप गर चाहें तो, नामुमकिन भी मुमकिन हो सके।
आप दाता दयाल हैं, और आप हैं पीरेमुगां॥

मनुष्य बनो के नियम

१—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिकता के नियम वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की बाणी को सरल सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक, उन्नति कारक, तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र हर मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों को घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जायँ।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नंबर व पता साफ़ साफ़ लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना चाहिए।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछ ताछ करके वहाँ से जो उत्तर मिले वह अगला अंक निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य जासकेगी अन्यथा नहीं।

९—नमूना।) के टिकट मिलने पर ही भेजा जा सकेगा।

१०—एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायँगे। जो किसी भी मास से बन सकते हैं।

११—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजने चाहिये मनिआर्डर कूपन पर अपना पता साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

मैनेजर—**गुन्शीलाल गोविल** (विश्वप्रेमी) मजिस्ट्रेट प्रथमश्रेणी बेंच

"मनुष्य बनो कार्यालय" (दयाल कम्पाउण्ड, पेच जामाजी)

यू० एस० जैन रोड, अलीगढ़ (उ० प्र०)

हमारे यहां की पुस्तकें

१–मनुष्य बनो हिंदी ॥=)
२–जागृत जीवन " ।॥)
३–मानवधर्म प्रकाश उर्दू १॥) हिंदी ।॥)
४–सन्तमत सार हिंदी १)
५–फ़क़ीर शब्दावली " ॥=)
६–आत्मिक आदर्श " ।॥)
७–राधास्वामी मत " ।=)
८–आकाशीय रचना उ. ॥), हिंदी ॥)
९–सार भेद " ॥) " ॥=)
१०–शब्द सार " ।॥)
११–मनोकामना देवी ।=)
१२–नय्यरे अनवर उर्दू ।॥)
१३–आवागमन " ।॥) हिंदी १)
१४–सदाये फ़क़ीर " ।=)
१५–हयाते नौ " ।)
१६–सचाई " ।)
१७–विष्णु संहिता हिन्दी १॥)
१८–शिव संहिता " १॥)
१९–बेफिक्री उर्दू ।॥)
२०–दयाल संहिता " ।॥)
२१–सुमेरु पर्वत हिन्दी १॥)
२२–दातादयाल शब्द संग्रह हिंदी ॥=)
२३–योगी हिन्दी ।)
२४–शकुन विद्या हिन्दी ।)
२५–दस अवतार तिरंगा ॥)
२६–परमार्थ सुधार हिन्दी ।॥)
२७–गृहस्थी गुरु उर्दू ।॥)
२८–भाग्य को बढ़ाओ हिन्दी ।)
२९–निष्कलंक अवतार हिंदी उर्दू ॥)
३०–विश्वहितैषी उ. १॥) विश्वप्रेमी ॥)
३१–तरक़्क़ी का राज उर्दू ।=)
३२–जगत कल्याण, जगत निस्तार
३३–जगत उद्धार उर्दू २) १॥) १।)

३४–यथार्थ शांति संदेश उर्दू ॥) हिन्दी ।)
३५–क़ानूने ख़याल हिन्दी १)

36--Message of Peace	0-10-0
37--Truth & Reality	0- 6-0
38--Independence Day Leaflets	0- 2-0
39--Real Independence	0- 5-0
40--Letters of Data Dayal	0-12-0
41--Light on Anandyog	0- 3-0

प्रकाशक व मैनेजिंग एडीटर
मुन्शीलाल गोविल (विश्वप्रेमी)
"मनुष्य बनो कार्यालय"
दयाल कम्पाउण्ड, पेच जामा जी
यू० एम० जैन रोड अलीगढ़ ।

कृपया न मिलने पर निम्न पते पर लौटा दें :—

"मनुष्य बनो कार्यालय"

ग्रा० संख्या

दयाल कम्पाउण्ड, पेच जामाजी अलीगढ़ (उ० प्र०)

श्रीमान्...
....
....